

Chapter बहत्तर

जरासन्ध असुर का वध

इस अध्याय में बतलाया गया है कि भगवान् कृष्ण ने किस तरह राजा युधिष्ठिर की विनती सुनी और तब जरासन्ध को पराजित करने के लिए भीमसेन को नियुक्त किया।

एक दिन जब भगवान् कृष्ण राजसभा में बैठे थे तो राजा युधिष्ठिर ने उन्हें सम्बोधित किया, “हे प्रभु! मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हूँ। जिनकी रुचि आपकी भक्ति में नहीं है, वे आपके भक्तों की

श्रेष्ठता तथा अभक्तों की निकृष्टता का स्वयं अवलोकन इस यज्ञ में कर सकेंगे। वे आपके चरणकमलों का दर्शन भी कर सकेंगे।”

भगवान् कृष्ण ने राजा युधिष्ठिर के प्रस्ताव की बढ़ा-चढ़ा कर प्रशंसा करते हुए कहा, “आपकी योजना इतनी उत्तम है कि इससे आपकी ख्याति विश्व-भर में फैल जायेगी। निस्सन्देह सारे जीवों को इस यज्ञ के सम्पन्न होने की कामना करनी चाहिए। किन्तु इस यज्ञ को सम्भव बनाने के पूर्व आपको पृथ्वी के सारे राजाओं को परास्त करना होगा और इसके लिए आवश्यक सामग्री जुटानी होगी।”

भगवान् कृष्ण के शब्दों से तुष्ट होकर युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को विविध दिशाओं को जीतने के लिए भेज दिया। अपनी अपनी नियत दिशाओं के राजाओं को—या उनकी वफादारी को—जीत कर वे युधिष्ठिर के लिए अथाह सम्पत्ति साथ में ले आये। किन्तु उन्होंने यह जानकारी दी कि जरासन्ध पराजित नहीं किया जा सका। जब युधिष्ठिर मन में यह विचार कर रहे थे कि जरासन्ध को किस तरह दमित किया जाय, तो श्रीकृष्ण ने उद्धव की सलाह का पालन करते हुए युधिष्ठिर से इसे पूरा करने के साधनों को प्रकट कर दिया।

तब भीम, अर्जुन तथा श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणों का वेश बनाया और फिर जरासन्ध के महल में गये। जरासन्ध ब्राह्मणों का भक्त था। उन्होंने राजा जरासन्ध से अपना परिचय अपने को ब्राह्मण बतला कर दिया और उसके सत्कार की ख्याति की प्रशंसा की तथा अपनी इच्छा पूरी करने के लिए उससे याचना की। उनके अंगों पर धनुष की डोरी के निशान देखकर जरासन्ध समझ गया कि ये तीनों योद्धा हैं, ब्राह्मण नहीं, अतः भयभीत होते हुए भी उसने उनकी इच्छा पूरी करने का वचन दिया। तभी भगवान् कृष्ण ने अपना वेश उतार फेंका और जरासन्ध से द्वन्द्व युद्ध करने के लिए कहा। किन्तु जरासन्ध ने यह कहकर इनकार कर दिया कि तुम कायर हो क्योंकि एक बार युद्धभूमि से भाग चुके हो। जरासन्ध ने अर्जुन से भी इसलिए लड़ने से इनकार कर दिया, क्योंकि वह आयु तथा आकार में उससे निकृष्ट था। किन्तु भीम को उसने योग्य प्रतिद्वन्द्वी स्वीकार किया। इस प्रकार जरासन्ध ने भीम को एक गदा दी और स्वयं भी एक गदा ले ली और दोनों युद्ध करने के लिए नगर से बाहर चले गये।

जब कुछ समय तक युद्ध चलता रहा तो यह स्पष्ट हो गया कि दोनों ही विजय पाने के लिए समान रूप से बलशाली हैं। तब कृष्ण ने वृक्ष की एक छोटी टहनी को तोड़ कर दो खण्ड कर दिये और इस

तरह भीम को दिखला दिया कि जरासन्ध को वह कैसे मारे। भीम ने जरासन्ध को भूमि पर पटक दिया, उसके एक पाँव पर अपना पाँव रखा और दूसरे पाँव को अपने हाथों से पकड़ कर गुदा से लेकर सिर तक चीर डाला।

जरासन्ध को मरा हुआ देखकर उसके सम्बन्धी तथा उसकी प्रजा शोक से रोने-चिल्लाने लगीं। तब भगवान् कृष्ण ने जरासन्ध के पुत्र को मगध का राजा नियुक्त किया और उन राजाओं को मुक्त किया, जिन्हें जरासन्ध ने बन्दी बना रखा था।

श्रीशुक उवाच

एकदा तु सभामध्य आस्थितो मुनिभिर्वृतः ।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्भ्रातृभिश्च युधिष्ठिरः ॥ १ ॥
आचार्यैः कुलवृद्धैश्च ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः ।
शृण्वतामेव चैतेषामाभाष्येदमुवाच ह ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एकदा—एक बार; तु—तथा; सभा—राजसभा के; मध्ये—बीच में; आस्थितः—आसीन; मुनिभिः—मुनियों द्वारा; वृतः—घिरे हुए; ब्राह्मणैः क्षत्रियैः वैश्यैः—ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों से; भ्रातृभिः—भाइयों से; च—तथा; युधिष्ठिरः—युधिष्ठिर; आचार्यैः—अपने गुरुओं से; कुल—परिवार के; वृद्धैः—बड़े-बूढ़ों से; च—भी; ज्ञाति—सगे; सम्बन्धि—सम्बन्धियों; बान्धवैः—तथा मित्रों से; शृण्वताम्—सुनते ही; एव—निस्सन्देह; च—तथा; एतेषाम्—सारे के सारे; आभाष्य—(कृष्ण को) सम्बोधित करके; इदम्—यह; उवाच ह—कहा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : एक दिन जब राजा युधिष्ठिर राजसभा में प्रख्यात मुनियों, ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों तथा अपने भाइयों, गुरुओं, परिवार के बड़े-बूढ़ों, सगे-सम्बन्धियों ससुराल वालों तथा मित्रों से घिर कर बैठे हुए थे, तो उन्होंने भगवान् कृष्ण को सम्बोधित किया, जबकि दूसरे सभी व्यक्ति सुन रहे थे।

श्रीयुधिष्ठिर उवाच

क्रतुराजेन गोविन्द राजसूयेन पावनीः ।
यक्ष्ये विभूतीर्भवतस्तत्सम्पादय नः प्रभो ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-युधिष्ठिरः उवाच—श्री युधिष्ठिर ने कहा; क्रतु—मुख्य अग्नि यज्ञों के; राजेन—राजा; गोविन्द—हे कृष्ण; राजसूयेन—राजसूय से; पावनीः—पवित्र करने वाला; यक्ष्ये—मैं पूजा करना चाहता हूँ; विभूतीः—ऐश्वर्यशाली अंशों द्वारा; भवतः—आपकी; तत्—उस; सम्पादय—कृपया करने की अनुमति दें; नः—हमें; प्रभो—हे स्वामी।

श्री युधिष्ठिर ने कहा : हे गोविन्द, मैं आपके शुभ ऐश्वर्यशाली अंशों की पूजा वैदिक उत्सवों के राजा, राजसूय यज्ञ द्वारा करना चाहता हूँ। हे प्रभु, हमारे इस प्रयास को सफल बनायें।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं कि *विभूतिभिः* शब्द भगवान् कृष्ण के अंशों (अंशान्) का द्योतक है और श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इससे भी आगे कहते हैं कि *विभूतिभिः* शब्द इस संसार के भीतर भगवान् कृष्ण के ऐश्वर्यवान् अंशों यथा देवताओं तथा शक्तिप्रदत्त जीवों का सूचक है। अतः श्रील प्रभुपाद ने *श्रीकृष्ण* में इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है “प्रिय कृष्ण! राजसूय यज्ञ नाम वाला यज्ञ सम्राट द्वारा सम्पन्न किया जाता है और उसे समस्त यज्ञों का राजा कहा जाता है। इस यज्ञ को सम्पन्न करके मैं उन सारे देवताओं को तुष्ट करना चाहता हूँ, जो इस भौतिक जगत में आपके शक्तिप्रदत्त प्रतिनिधि हैं। मैं चाहूँगा कि आप कृपा करके इस महान् कार्य में मेरी सहायता करें, जिससे इसे सफलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सके। जहाँ तक हम पाण्डवों का प्रश्न है, देवताओं से हमें कुछ भी नहीं माँगना है। हम आपके भक्त बनकर निजी रूप से सन्तुष्ट हैं। जैसाकि आपने *भगवद्गीता* में कहा है “जो लोग भौतिक इच्छाओं से मोहग्रस्त हैं, वे ही देवताओं को पूजते हैं।” किन्तु हमारा उद्देश्य भिन्न है। मैं यह राजसूय यज्ञ करना चाहता हूँ और देवताओं को आमंत्रित करके यह दिखलाना चाहता हूँ कि आपके बिना उनके पास स्वयं कोई शक्ति नहीं होती। वे सभी आपके दास हैं और आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। अल्पज्ञान की कमी के कारण मूर्ख व्यक्ति आपको सामान्य मनुष्य मानते हैं। कभी वे आपमें दोष निकालने का प्रयत्न करते हैं, तो कभी वे आपको बदनाम करना चाहते हैं। अतएव मैं यह राजसूय यज्ञ सम्पन्न करना चाहता हूँ। मैं ब्रह्मा, शिव तथा स्वर्गलोक के सभी अन्य प्रमुख देवताओं को आमंत्रित करना चाहता हूँ। ब्रह्माण्ड के सारे भागों से आये देवताओं की उस महान् सभा में मैं यह प्रमाणित करना चाहता हूँ कि आप भगवान् हैं और प्रत्येक व्यक्ति आपका दास है।”

त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरन्ति

ध्यायन्त्यभद्रनशने शुचयो गृणन्ति ।

विन्दन्ति ते कमलनाभ भवापवर्ग-

माशासते यदि त आशिष ईश नान्ये ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

त्वत्—तुम्हारे; पादुके—खड़ाऊँ को; अविरतम्—निरन्तर; परि—पूर्णतया; ये—जो; चरन्ति—सेवा करते हैं; ध्यायन्ति—ध्यान करते हैं; अभद्र—अशुभ वस्तुओं के; नशने—विनाश करने वाली; शुचयः—पवित्र; गृणन्ति—तथा शब्दों द्वारा वर्णन करते हैं; विन्दन्ति—प्राप्त करते हैं; ते—वे; कमल—कमल (सदृश); नाभ—हे कमलनाभ; भव—भौतिक जीवन का; अपवर्गम्—मोक्ष; आशासते—इच्छा लगाये रहते हैं; यदि—यदि; ते—वे; आशिषः—इच्छित वस्तुएँ प्राप्त करते हैं; ईश—हे प्रभु; न—नहीं; अन्ये—अन्य पुरुष।

हे कमलनाभ, वे पवित्र व्यक्ति जो निरन्तर आपकी उन पादुकाओं की सेवा करते हैं, ध्यान करते हैं और उनका यशोगान करते हैं, जो समस्त अशुभ वस्तुओं को विनष्ट करने वाली हैं, उन्हें निश्चित रूप से इस भौतिक संसार से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यदि वे इस जगत में किसी वस्तु की आकांक्षा करते हैं, तो वे उसे प्राप्त करते हैं, किन्तु हे प्रभु, अन्य लोग, जो आपकी शरण ग्रहण नहीं करते, कभी भी तुष्ट नहीं होते।

तात्पर्य : इस संदर्भ में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं कि मुक्त कृष्णभावनाभावित व्यक्ति “न तो इस भौतिक जगत से मुक्त ही होना चाहते हैं, न भौतिक ऐश्वर्य का भोग करना चाहते हैं, उनकी इच्छाओं की पूर्ति कृष्णभावनाभावित कार्यों से हो जाती है। जहाँ तक हमारा (राजा युधिष्ठिर का) प्रश्न है, हम तो पूर्णतया आपके चरणकमलों में शरणागत हैं और आपकी कृपा से आपका साक्षात् दर्शन कर पाने के भाग्यशाली हैं। अतः स्वाभाविक है कि हमें भौतिक ऐश्वर्यों की कोई इच्छा नहीं है। वैदिक ज्ञान का निर्णय है कि आप भगवान् हैं। मैं इस तथ्य को स्थापित करना चाहता हूँ और मैं दुनिया को आपको भगवान् के रूप में तथा सामान्य शक्तिशाली ऐतिहासिक पुरुष के रूप में स्वीकार करने के अन्तर को दिखलाना चाहता हूँ। मैं दुनिया को यह दिखला देना चाहता हूँ कि आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करने मात्र से जीवन की सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त की जा सकती है, जिस तरह जड़ों को सींचकर पूरे वृक्ष की शाखाओं, पत्तियों तथा फूलों को तुष्ट किया जा सकता है। इस प्रकार यदि कोई कृष्णभावानामृत को ग्रहण करता है, तो उसका जीवन भौतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्ण बन जाता है।”

इसी तरह से युधिष्ठिर के कथन की श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती, व्याख्या करते हैं: न तो हमें राजसूय यज्ञ करने की उतावली है, न ही इसमें हमारा कोई स्वार्थ निहित है, क्योंकि हम आपके चरणकमलों का दर्शन तो पा ही रहे हैं और आपकी असीम कृपा से हमें आपका सान्निध्य भी प्राप्त है। किन्तु इस संसार में कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिनके हृदय दूषित हैं, अतः वे लोग सोचते हैं कि आप भगवान् न होकर सामान्य व्यक्ति हैं। या फिर वे आपमें दोष निकालते हैं और आपकी आलोचना तक कर डालते हैं। यह तीर हमारे हृदयों में बेध रहा है।

अतएव अपने हृदयों से इस तीर को निकालने के लिए हमें इस स्थान पर—राजसूय के बहाने—ब्रह्मा, रुद्र तथा अन्य चतुर ब्रह्मचारियों एवं देवताओं को बुलाना चाहिए, जो चौदहों लोकों में निवास

करते हैं। जब ऐसी उच्च श्रेणी की भीड़ एकत्र हो जायेगी, तो परमावश्यक हो जायेगा कि सबसे पहले अग्रपूजा के लिए व्यवस्था की जाय। और जब उन्हें यह प्रत्यक्ष दिखला दिया जायेगा कि आप, अर्थात् कृष्ण ही पूर्णपुरुषोत्तम भगवान् हैं, तो हमारे हृदयों को बेधने वाला तीर निकल जायेगा।”

तद्देवदेव भवतश्चरणारविन्द-

सेवानुभावमिह पश्यतु लोक एषः ।

ये त्वां भजन्ति न भजन्त्युत वोभयेषां

निष्ठां प्रदर्शय विभो कुरुसृञ्जयानाम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

तत्—इसलिए; देव-देव—हे स्वामियों के स्वामी; भवतः—आपके; चरण-अरविन्द—चरणकमलों की; सेवा—सेवा की; अनुभावम्—शक्ति; इह—इस संसार में; पश्यतु—वे देख सकें; लोकः—जनता; एषः—यह; ये—जो; त्वाम्—तुमको; भजन्ति—पूजते हैं; न भजन्ति—पूजा नहीं करते; उत वा—अथवा अन्य कुछ; उभयेषाम्—दोनों की; निष्ठाम्—पद को; प्रदर्शय—दिखलाइये; विभो—हे सर्वशक्तिमान; कुरु-सृञ्जयानाम्—कुरुओं तथा सृञ्जयों के।

अतएव हे देव-देव, इस संसार के लोग देख लें कि आपके चरणकमलों में की गई भक्ति की शक्ति कितनी है। हे सर्वशक्तिमान, आप उन्हें उन कुरुओं तथा सृञ्जयों की शक्ति दिखला दें, जो आपकी पूजा करते हैं और उनकी भी स्थिति दिखला दें, जो पूजा नहीं करते।

तात्पर्य : यहाँ पर हमें प्रचारक का हृदय स्पष्ट दिखता है। महान् भक्त युधिष्ठिर महाराज भगवान् कृष्ण से याचना करते हैं कि वे अपनी पूजा करने तथा पूजा न करने का फल स्पष्ट दिखला दें। यदि संसार के लोग इसे समझ सकते, तो वे पहचानने लगते कि कृष्ण ही परमेश्वर हैं और हर व्यक्ति का स्वार्थ इसी में निहित है कि उनकी शरण में जाये। जैसाकि महाजनों ने पुष्टि की है, युधिष्ठिर महाराज शुद्ध भगवद्भक्त हैं, अतः राजा के रूप में कर्तव्य निर्वाह करने के पीछे असली मन्तव्य भगवान् कृष्ण की श्रेष्ठता स्थापित करना था। यही है असली सार पाण्डवों के कार्यों का जिन्हें श्रीमद्भागवत तथा महाभारत दोनों में वर्णित किया गया है।

न ब्रह्मणः स्वपरभेदमतिस्तव स्यात्

सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः ।

संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसादः

सेवानुरूपमुदयो न विपर्ययोऽत्र ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ब्रह्मणः—ब्रह्म का; स्व—अपना; पर—तथा पराया; भेद—भेदभाव, भेद; मतिः—प्रवृत्ति; तव—तुम्हारी; स्यात्—शायद हो; सर्व—सारी वस्तुओं के; आत्मनः—आत्मा के; सम—समान; दृशः—जिसका दर्शन; स्व—अपने भीतर; सुख—सुख का; अनुभूतेः—अनुभूति की; संसेवताम्—उचित रीति से पूजा करने वालों के लिए; सुर-तरोः—कल्पवृक्ष के; इव—मानो; ते—तुम्हारी; प्रसादः—कृपा; सेवा—सेवा के साथ; अनुरूपम्—अनुरूप; उदयः—इच्छित फल; न—नहीं; विपर्ययः—उलटा; अत्र—इसमें।

आपके मन के भीतर “यह मेरा है और वह दूसरे का है” इस प्रकार का भेदभाव नहीं हो सकता, क्योंकि आप परम सत्य हैं, समस्त जीवों के आत्मा, सदैव समभाव रखने वाले और अपने अन्तर में दिव्य आनन्द का भोग करने वाले हैं। आप कल्पवृक्ष की तरह अपने उचित रूप से हर पूजने वाले को आशीर्वाद देते हैं और उनके द्वारा की गई सेवा के अनुपात में उन्हें इच्छित फल देते हैं। इसमें कोई भी दोष नहीं है।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि कल्पवृक्ष में न तो कोई भौतिक अनुरक्ति रहती है, न पक्षपात। वह तो एकमात्र पात्रों को अपना फल प्रदान करता है, अन्यो को नहीं। जीव गोस्वामी प्रभुपाद कहते हैं कि कल्पवृक्ष को यह सोचना नहीं पड़ता कि “यह पुरुष मेरी पूजा करने योग्य है और वह व्यक्ति नहीं है।” प्रत्युत कल्पवृक्ष उन सबों से प्रसन्न रहता है, जो ठीक से उसकी सेवा करते हैं और भगवान् भी इसी तरह कार्य करते हैं, जैसाकि राजा युधिष्ठिर ने यहाँ बतलाया है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती आगे कहते हैं कि किसी को भगवान् कृष्ण पर यह दोषारोपण नहीं करना चाहिए कि वे एक व्यक्ति से ईर्ष्या करते हैं और दूसरे के साथ पक्षपात करते हैं। चूँकि भगवान् स्व-सुखानुभूति हैं अर्थात् वे अपने भीतर अपना सुख का अनुभव करने वाले हैं, अतएव बद्धजीवों से उन्हें कुछ भी लेना-देना नहीं रहता। प्रत्युत वे उसी तरह प्रतिदान करते हैं, जिस तरह वे उनके पास जाते हैं। श्रील प्रभुपाद ने इसी बात को राजा युधिष्ठिर के कथन की व्याख्या करते हुए बहुत ही सुन्दर ढंग से बतलाया है—“यदि कोई व्यक्ति कृष्णभावनामृत को ग्रहण कर ले, तो उसका जीवन भौतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्ण हो जाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि आप कृष्ण-भक्त का पक्षपात करते हैं तथा अभक्त के प्रति उदासीन रहते हैं। आप तो सबों के लिए एक से हैं। यह आपकी घोषणा है। आप एक व्यक्ति का पक्षपात करके दूसरों से अनासक्त नहीं हो सकते, क्योंकि आप परमात्मा रूप में सबों में विद्यमान हैं और हर व्यक्ति को उसके सकाम कर्मों का फल देते हैं। आप हर जीवात्मा को इच्छानुसार इस भौतिक जगत का भोग करने का अवसर प्रदान करते हैं। परमात्मा होने से आप जीवात्मा के साथ शरीर में विद्यमान हैं और जीवात्मा को उसके किये हुए कर्म का फल देते हैं। साथ

ही कृष्णभावनामृत को विकसित करके आप भक्तिमयी सेवा करने का सुअवसर भी प्रदान करते हैं। आप यह स्पष्ट घोषणा करते हैं कि अन्य सारे धर्मों को त्याग कर मेरी शरण में आओ। आप यह भी घोषित करते हैं कि आप सभी पापकर्मों के फलों से उसे मुक्त करके उसे संभाल लेंगे। आप स्वर्ग के कल्पवृक्ष की भाँति हैं, जो हर एक को इच्छाफल देता है। हर व्यक्ति सर्वोच्च सिद्धि पाने के लिए स्वतंत्र है, किन्तु यदि कोई ऐसी इच्छा नहीं करता, तो आपके द्वारा उसे कम वर दिया जाना पक्षपातवश नहीं होता।”

श्रीभगवानुवाच

सम्यग्व्यवसितं राजन्भवता शत्रुकर्शन ।

कल्याणी येन ते कीर्तिलोकाननुभविष्यति ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; सम्यक्—पूरी तरह से; व्यवसितम्—संकल्प किया हुआ; राजन्—हे राजन्; भवता—आपके द्वारा; शत्रु—शत्रुओं को; कर्शन—हे सताने वाले; कल्याणी—शुभ; येन—जिससे; ते—तुम्हारी; कीर्तिः—ख्याति; लोकान्—सारे लोकों को; अनुभविष्यति—देखेगी।

भगवान् ने कहा : हे राजन्, तुम्हारा निर्णय सही है, अतएव हे शत्रुकर्शन, तुम्हारी कल्याणकारी ख्याति सभी लोकों में फैलेगी।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् कृष्ण राजा युधिष्ठिर के इस निर्णय पर सहमति देते हैं कि राजसूय यज्ञ सम्पन्न किया जाय। भगवान् इस कथन से भी सहमत हैं कि इस तथ्य में कुछ भी अनुचित नहीं है कि जो उनकी पूजा करते हैं उन्हें एक तरह का फल मिलता है और जो ऐसा नहीं करते उन्हें दूसरी तरह का फल मिलता है। भागवत के महान् टीकाकार इंगित करते हैं कि युधिष्ठिर को शत्रुकर्शन के नाम से सम्बोधित करके भगवान् कृष्ण उन्हें समस्त शत्रु-राजाओं को जीतने की शक्ति प्रदान कर रहे हैं। इस प्रकार कृष्ण ने भविष्यवाणी की कि युधिष्ठिर की सुख्याति लोकों में फैलेगी और सचमुच वैसा ही हुआ।

ऋषीणां पितृदेवानां सुहृदामपि नः प्रभो ।

सर्वेषामपि भूतानामीप्सितः क्रतुराडयम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

ऋषीणाम्—ऋषियों के लिए; पितृ—मृत पूर्वज; देवानाम्—तथा देवताओं के लिए; सुहृदाम्—मित्रों के लिए; अपि—भी; नः—हमारा; प्रभोः—हे प्रभु; सर्वेषाम्—सबों के लिए; अपि—भी; भूतानाम्—जीवों के लिए; ईप्सितः—वांछनीय, अभीष्ट; क्रतु—प्रमुख वैदिक यज्ञों के; राट्—राजा; अयम्—इस।

हे प्रभु, निस्सन्देह महर्षियों, पितरों तथा देवताओं के लिए, हमारे शुभचिन्तक मित्रों के लिए और दरअसल सारे जीवों के लिए इस वैदिक यज्ञों के राजा का सम्पन्न होना वांछनीय है।

विजित्य नृपतीन्सर्वान्कृत्वा च जगतीं वशे ।
सम्भृत्य सर्वसम्भारानाहरस्व महाक्रतुम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

विजित्य—जीत कर; नृ-पतीन्—राजाओं को; सर्वान्—समस्त; कृत्वा—करके; च—तथा; जगतीम्—पृथ्वी को; वशे—अपने वश में; सम्भृत्य—एकत्र करके; सर्व—सारी; सम्भारान्—सामग्री; आहरस्व—सम्पन्न करो; महा—महान्; क्रतुम्—यज्ञ को।

सबसे पहले सारे राजाओं को जीतो, पृथ्वी को अपने अधीन करो और आवश्यक साज-सामग्री एकत्र करो, तब इस महान् यज्ञ को सम्पन्न करो।

एते ते भ्रातरो राजँल्लोकपालांशसम्भवाः ।
जितोऽस्म्यात्मवता तेऽहं दुर्जयो योऽकृतात्मभिः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

एते—ये; ते—तुम्हारे; भ्रातरः—भाई; राजन्—हे राजन्; लोक—लोकों पर; पाल—शासन करने वाले देवताओं से; अंश—अंशरूप; सम्भवाः—उत्पन्न; जितः—जीता हुआ; अस्मि—हूँ; आत्म-वता—आत्मसंयमी; ते—तुम्हारे द्वारा; अहम्—मैं; दुर्जयः—न जीता जा सकने वाला; यः—जो; अकृत-आत्मभिः—जो आत्मसंयमी नहीं है, उनके द्वारा।

हे राजन्, तुम्हारे इन भाइयों ने विभिन्न लोकपालों के अंशों के रूप में जन्म लिया है। और तुम तो इतने आत्मसंयमी हो कि तुमने मुझे भी जीत लिया है, जबकि मैं उन लोगों के लिए दुर्जय हूँ, जिनकी इन्द्रियाँ उनके वश में नहीं हैं।

तात्पर्य : श्रीकृष्ण में श्रील प्रभुपाद ने लिखा है, “कहा जाता है कि भीम वायुदेव से उत्पन्न थे और अर्जुन इन्द्रदेव से जबकि स्वयं युधिष्ठिर यमराज से उत्पन्न थे। श्रील प्रभुपाद आगे लिखते हैं कि भगवान् कृष्ण ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि वे उस व्यक्ति के प्रेम द्वारा जीत लिये जाते हैं, जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया हो। जिसने अपनी इन्द्रियों को नहीं जीता है, वह भगवान् को नहीं जीत सकता। भक्ति का यह रहस्य है। इन्द्रियों को जीतने का अर्थ है, उन्हें निरन्तर भगवान् की सेवा में लगाना। सभी पाण्डवों का विशेष गुण यह था कि वे सदैव अपनी इन्द्रियों को भगवान् की सेवा में लगाये रखते थे। जो व्यक्ति इस तरह अपनी इन्द्रियों को लगाता है, वह शुद्ध हो जाता है और शुद्ध

इन्द्रियों से मनुष्य वास्तव में भगवान् की सेवा कर सकता है। इस तरह भगवान् दिव्य प्रेमाभक्ति के माध्यम से भक्त द्वारा जीते जा सकते हैं।”

न कश्चिन्मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रिया ।
विभूतिभिर्वाभिभवेद्देवोऽपि किमु पार्थिवः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; कश्चित्—कोई व्यक्ति; मत्—मेरे प्रति; परम्—समर्पित; लोके—इस जगत में; तेजसा—अपनी शक्ति से; यशसा—यश से; श्रिया—सौन्दर्य से; विभूतिभिः—ऐश्वर्य से; वा—अथवा; अभिभवेत्—जीत सकता है; देवः—देवता; अपि—भी; किम् उ—क्या कहा जाय; पार्थिवः—पृथ्वी का शासक।

इस जगत में मेरे भक्त को देवता भी अपने बल, सौन्दर्य, यश या सम्पत्ति से नहीं हरा सकते, पृथ्वी के शासक की तो बात ही क्या ?

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् कृष्ण राजा युधिष्ठिर को आश्चस्त करते हैं कि संसारी राजाओं को जीतना कोई समस्या नहीं है, क्योंकि वह स्वयं शुद्ध भक्त है और भगवान् का शुद्ध भक्त देवताओं तक से नहीं जीता जा सकता। यद्यपि भौतिकतावादी लोगों को अपनी शक्ति, यश, सौन्दर्य तथा ऐश्वर्य का गर्व रहता है, किन्तु वे कभी भी इनमें से किसी दिशा में भगवान् के शुद्ध भक्त से आगे नहीं निकल सकते।

श्रीशुक उवाच

निशम्य भगवद्गीतं प्रीतः फुल्लमुखाम्बुजः ।
भ्रातृन्दिग्विजयेऽयुङ्क्त विष्णुतेजोपबृंहितान् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुक ने कहा; निशम्य—सुनकर; भगवत्—भगवान् के; गीतम्—गीत; प्रीतः—प्रसन्न; फुल्ल—खिला हुआ; मुख—उसका मुँह; अम्बुजः—कमल जैसा; भ्रातृन्—उसके भाइयों को; दिक्—सारी दिशाओं की; विजये—विजय में; अयुङ्क्त—व्यस्त; विष्णु—भगवान् विष्णु के; तेजः—तेज से; उपबृंहितान्—प्रबलित, पुष्ट।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : भगवान् द्वारा इन शब्दों रूपी गायन को सुनकर युधिष्ठिर हर्षित हो उठे और उनका मुख कमल सदृश खिल गया। इस तरह उन्होंने अपने भाइयों को, जो भगवान् विष्णु की शक्ति से समन्वित थे, सभी दिशाओं पर विजय के लिए भेज दिया।

सहदेवं दक्षिणस्यामादिशत्सह सृञ्जयैः ।
दिशि प्रतीच्यां नकुलमुदीच्यां सव्यसाचिनम् ।

प्राच्यां वृकोदरं मत्स्यैः केकयैः सह मद्रकैः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सहदेवम्—सहदेव को; दक्षिणस्याम्—दक्षिण की ओर; आदिशत्—आज्ञा दी; सह—साथ; सृञ्जयैः—सृञ्जय जाति के योद्धाओं के; दिशि—दिशा की ओर; प्रतीच्याम्—पश्चिमी; नकुलम्—नकुल को; उदीच्याम्—उत्तर की ओर; सव्यसाचिनम्—अर्जुन को; प्राच्याम्—पूर्व की ओर; वृकोदरम्—भीम को; मत्स्यैः—मत्स्यों; केकयैः—केकयों के; सह—साथ; मद्रकैः—तथा मद्रकों के साथ।

उन्होंने सहदेव को सृञ्जयों के साथ दक्षिण, नकुल को मत्स्यों के साथ पश्चिम, अर्जुन को केकयों के साथ उत्तर तथा भीम को मद्रकों के साथ पूर्व दिशा में भेज दिया।

ते विजित्य नृपान्वीरा आजहृदिग्भ्य ओजसा ।

अजातशत्रवे भूरि द्रविणं नृप यक्ष्यते ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; विजित्य—हराकर; नृपान्—राजाओं को; वीराः—वीर; आजहृः—ले आये; दिग्भ्यः—विभिन्न दिशाओं से; ओजसा—अपनी शक्ति से; अजात-शत्रवे—युधिष्ठिर महाराज के लिए; भूरि—प्रचुर; द्रविणम्—धन; नृप—हे राजा (परीक्षित); यक्ष्यते—यज्ञ करने का इच्छुक।

हे राजन्, अपने बल से अनेक राजाओं को हराकर ये वीर भाई यज्ञ करने के इच्छुक युधिष्ठिर महाराज के लिए प्रचुर धन लेते आये।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, “यह ध्यान देने की बात है कि अपने कनिष्ठ भाइयों को विभिन्न दिशाओं में विजय प्राप्त करने के लिए भेजने में महाराज युधिष्ठिर का वास्तविक उद्देश्य यह नहीं था कि वे राजाओं पर हमला बोल दें। वास्तव में, उनके भाई विभिन्न दिशाओं में राजाओं को महाराज युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ सम्पन्न करने के विचार का समाचार देने गये। राजाओं को इस तरह यह सूचित किया गया कि यज्ञ को पूरा करने के लिए उन्हें कर (टैक्स) देना होगा। राजा युधिष्ठिर को कर देने का अर्थ होता था कि उस राजा ने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली है। इस प्रकार के कार्य को जब कोई राजा अस्वीकार कर देता तो ऐसी स्थिति में युद्ध अवश्यम्भावी हो जाता। अतः उनकी शक्ति एवं प्रभाव के द्वारा उनके भाइयों ने विभिन्न दिशाओं में राजाओं को पराजित किया और पर्याप्त कर एवं उपहार एकत्र कर लिये। इन्हें राजा युधिष्ठिर के समक्ष उनके भाइयों ने लाकर प्रस्तुत किया।”

श्रुत्वाजितं जरासन्धं नृपतेर्ध्यायतो हरिः ।

आहोपायं तमेवाद्य उद्धवो यमुवाच ह ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; अजितम्—बिना जीता हुआ; जरासन्धम्—जरासन्ध को; नृपतेः—राजा के; ध्यायतः—मनन करते समय; हरिः—भगवान् हरि ने; आह—बतलाया; उपायम्—उपाय; तम्—उसको; एव—निस्सन्देह; आद्यः—आदि पुरुष; उद्धवः—उद्धव ने; यम्—जिसको; उवाच ह—कहा था।

जब राजा युधिष्ठिर ने सुना कि जरासन्ध पराजित नहीं किया जा सका तो वे सोच-विचार में पड़ गये और तब आदि भगवान् हरि ने उन्हें वह उपाय बताया, जिसे उद्धव ने जरासन्ध को हराने के लिए कह सुनाया था।

भीमसेनोऽर्जुनः कृष्णो ब्रह्मलिनाधरास्त्रयः ।
जग्मुर्गिरिव्रजं तात बृहद्रथसुतो यतः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

भीमसेनः अर्जुनः कृष्णः—भीमसेन, अर्जुन तथा कृष्ण; ब्रह्म—ब्राह्मणों के; लिङ्ग—वेश; धराः—धारण करके; त्रयः—तीनों; जग्मुः—गये; गिरिव्रजम्—गिरिव्रज के किले वाले नगर में; तात—हे प्रिय (परीक्षित); बृहद्रथ-सुतः—बृहद्रथ का पुत्र (जरासन्ध); यतः—जिधर।

इस तरह भीमसेन, अर्जुन तथा कृष्ण ने ब्राह्मणों का वेश बनाया और हे राजा, वे गिरिव्रज गये जहाँ बृहद्रथ का पुत्र था।

ते गत्वातिथ्यवेलायां गृहेषु गृहमेधिनम् ।
ब्रह्मण्यं समयाचेरन्नाजन्या ब्रह्मलिङ्गिनः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; गत्वा—जाकर; आतिथ्य—अतिथियों के स्वागतार्थ; वेलायाम्—निश्चित समय पर; गृहेषु—उसके आवास स्थान में; गृह-मेधिनम्—धार्मिक गृहस्थों से; ब्रह्मण्यम्—ब्राह्मणों के प्रति आदर से पूर्ण; समयाचेरन्—याचना की; राजन्याः—राजागण; ब्रह्म-लिङ्गिनः—ब्राह्मणों के चिह्नों से युक्त होकर।

ब्राह्मणों का वेश धारण करके ये राजवंशी योद्धा जरासन्ध के घर, अतिथियों का स्वागत करने के लिए निश्चित समय पर, पहुँचे। उन्होंने उस कर्तव्यनिष्ठ गृहस्थ के समक्ष याचना की, क्योंकि वह ब्राह्मण वर्ग का विशेष रूप से आदर करता था।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, “जरासन्ध एक कर्तव्यपरायण गृहस्थ था और वह ब्राह्मणों का अत्यधिक आदर करता था। वह एक महान् योद्धा, क्षत्रिय राजा था किन्तु वह वैदिक आदेशों की कभी भी उपेक्षा नहीं करता था। ब्राह्मणों को वैदिक आदेशों के अनुसार अन्य सारी जातियों का आध्यात्मिक गुरु माना जाता है। श्रीकृष्ण, अर्जुन एवं भीमसेन वास्तव में क्षत्रिय थे परन्तु उन्होंने ब्राह्मण का वेश बना रखा था। जिस समय जरासन्ध ब्राह्मणों को दान दिया करता था और अतिथियों के रूप में उनका स्वागत किया करता था, उसी समय ये तीनों उसके पास पहुँचे।”

राजन्विद्धयतिथीन्प्राप्तानर्थिनो दूरमागतान् ।
तन्नः प्रयच्छ भद्रं ते यद्वयं कामयामहे ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

राजन्—हे राजन्; विद्धि—कृपया जानो; अतिथीन्—अतिथियों को; प्राप्तान्—आया हुआ; अर्थिनः—पाने के इच्छुक; दूरम्—दूर से; आगतान्—आये हुए; तत्—वह; नः—हमको; प्रयच्छ—दो; भद्रम्—शुभ, मंगल; ते—तुम से; यत्—जो भी; वयम्—हम; कामयामहे—इच्छा कर रहे हैं।

[कृष्ण, अर्जुन तथा भीम ने कहा] हे राजा, आप हमें दीन अतिथि जानें, जो आपके पास बहुत दूर से आये हैं। हम आपका कल्याण चाहते हैं। हम जो भी चाहें, कृपया उसे हमें दें।

किं दुर्मर्षं तितिक्षूणां किमकार्यमसाधुभिः ।
किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; दुर्मर्षम्—असह्य; तितिक्षूणाम्—सहनशील के लिए; किम्—क्या; अकार्यम्—करना असम्भव; असाधुभिः—असाधु के लिए; किम्—क्या; न देयम्—दे पाना असम्भव; वदान्यानाम्—उदार के लिए; कः—कौन; परः—पृथक्; सम—समान; दर्शिनाम्—दृष्टि वालों को।

सहनशील व्यक्ति क्या नहीं सह सकता? दुष्ट क्या नहीं करेगा? उदार व्यक्ति दान में क्या नहीं दे देगा? और समदृष्टि वाले के लिए बाहरी कौन है?

तात्पर्य : पिछले श्लोक में भगवान् कृष्ण तथा दोनों पाण्डव-भाइयों, भीम और अर्जुन ने जरासन्ध से अनुरोध किया कि वे जो कुछ माँगें उन्हें दिया जाय। यहाँ पर वे बतलाते हैं कि उन्हें अपनी इच्छा को स्पष्ट करने की आवश्यकता क्यों नहीं है।

आचार्यों ने इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है—जरासन्ध ने सोचा होगा, “चाहो तो मेरा पुत्र माँगो, जिससे बिछुड़ना असह्य होगा।”

इस संभव आपत्ति पर कृष्ण तथा पाण्डवों का उत्तर होगा—“सहनशील व्यक्ति के लिए कुछ भी असह्य नहीं है।”

इसी प्रकार जरासन्ध आपत्ति कर सकता था, “इससे क्या! यदि तुम मुझसे मेरा शरीर या मेरे बहुमूल्य मणि तथा अन्य आभूषण देने को कहो जो मेरे पुत्रों के लिए हैं, सामान्य भिक्षुओं के लिए नहीं?”

इस पर वे बोले होंगे, “जो उदार है, वह दान में क्या नहीं दे डालता!” दूसरे शब्दों में हर वस्तु

देय है।

जरासन्ध को यह भी आपत्ति हो सकती है कि वह अपने शत्रुओं को दान क्यों दे। इस पर उसके अतिथियों ने प्रत्युत्तर में कहा होगा कः परः समदर्शिनः जो समदर्शी हैं, उसके लिए पराया कौन है ?

इस तरह श्रीकृष्ण तथा पाण्डवों ने जरासन्ध को प्रोत्साहित किया, जिससे बिना और अधिक वादविवाद के, वह उनकी प्रार्थना मान ले।

योऽनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशो ध्रुवम् ।

नाचिनोति स्वयं कल्पः स वाच्यः शोच्य एव सः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

यः—जो; अनित्येन—क्षणिक; शरीरेण—भौतिक शरीर से; सतां—सन्तों द्वारा; गेयम्—गायन के लिए; यशः—यश; ध्रुवम्—स्थायी; न आचिनोति—अर्जित नहीं करता; स्वयम्—स्वयं; कल्पः—सक्षम; सः—वह; वाच्यः—निन्दनीय; शोच्यः—शोचनीय; एव—निस्सन्देह; सः—वह।

वह निस्सन्देह निन्दनीय तथा दयनीय है, जो अपने क्षणिक शरीर से महान् सन्तों द्वारा गाई गई चिर ख्याति को प्राप्त करने में असफल रहता है, यद्यपि वह ऐसा करने में सक्षम होता है।

हरिश्चन्द्रो रन्तिदेव उञ्छवृत्तिः शिबिर्बलिः ।

व्याधः कपोतो बहवो ह्यध्रुवेण ध्रुवं गताः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

हरिश्चन्द्रः रन्तिदेवः—हरिश्चन्द्र तथा रन्तिदेव; उञ्छ-वृत्तिः—फसल के गिरे दानों को बीन कर जीविका चलाने वाला, मुद्गल; शिबिः बलिः—शिबि तथा बलि; व्याधः—शिकारी; कपोतः—कबूतर; बहवः—अनेक; हि—निस्सन्देह; अध्रुवेण—क्षणिक द्वारा; ध्रुवम्—स्थायी तक; गताः—गये हुए।

हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, उञ्छवृत्ति मुद्गल, शिबि, बलि, पौराणिक शिकारी तथा कबूतर एवं अन्य अनेकों ने क्षणभंगुर के द्वारा अविनाशी को प्राप्त किया है।

तात्पर्य : यहाँ पर श्रीकृष्ण तथा दोनों पाण्डव जरासन्ध को संकेत कर रहे हैं कि मनुष्य नाशवान् भौतिक शरीर का उपयोग जीवन की अविनश्वर दशा प्राप्त करने के लिए कर सकता है। चूँकि जरासन्ध भौतिकतावादी था, इसलिए उन्होंने उसे स्वर्ग का लोभ दिलाया जहाँ जीवन इतने दीर्घ समय तक चलता रहता है कि पृथ्वीवासियों को वह अविनश्वर प्रतीत होता है।

श्रील श्रीधर स्वामी ने इस श्लोक में उल्लिखित महापुरुषों के इतिहास का सारांश दिया है “विश्वामित्र का ऋण चुकाने के लिए हरिश्चन्द्र ने अपनी स्त्री तथा पुत्रों समेत सभी कुछ बेच दिया। वे

चाण्डाल पद प्राप्त करके भी हतोत्साहित नहीं हुए। इस तरह वे अयोध्या के समस्त वासियों सहित स्वर्गलोक गये। रन्तिदेव ने ४८ दिनों तक प्यासे रहने के बाद किसी तरह कुछ भोजन तथा जल प्राप्त किया, किन्तु तभी कुछ भिक्षुक आ गये, तो उन्होंने उन्हें सब दे दिया। इस तरह वे ब्रह्मलोक गये। मुद्गल फसल कटने के बाद खेतों से गिरा हुआ अन्न बीना करते थे फिर भी वे बिना आमंत्रण सहसा आए अतिथियों की अत्यधिक आवभगत करते थे, यद्यपि उनका परिवार छह मास से निर्धनता से जूझ रहा था। इस तरह वे भी ब्रह्मलोक गये।

शरण में आये कबूतर (कपोत) की रक्षा करने के लिए राजा शिबि ने बाज को अपना मांस देकर स्वर्ग-प्राप्ति की। बलि महाराज ने भगवान् हरि को अपना सर्वस्व दान में दे दिया, जब भगवान् ने बौने ब्राह्मण (वामनदेव) का वेश बना लिया था। इस तरह बलि को भगवान् का सात्रिध्य प्राप्त हो सका। कबूतर तथा उसकी संगिनी ने बहेलिये को अपना मांस आतिथ्य प्रदर्शित करने के लिए दे दिया। इस तरह उन्हें विमान द्वारा स्वर्ग ले जाया गया। जब बहेलिये ने उनकी सात्विक दशा समझी, तो वह भी विरक्त हो गया। उसने इस तरह शिकार करना छोड़ दिया और वह तपस्या करने चला गया। चूँकि वह सारे पापों से मुक्त हो चुका था, अतः जब जंगल की आग में उसका शरीर जल गया, तो वह स्वर्गलोक चला गया। इस तरह अनेक पुरुषों ने नाशवान् भौतिक शरीर के द्वारा ही उच्च लोकों में चिरस्थायी जीवन प्राप्त किया।”

श्रीशुक उवाच

स्वरैराकृतिभिस्तांस्तु प्रकोष्ठैर्ज्याहतैरपि ।

राजन्यबन्धून्विज्ञाय दृष्टपूर्वानचिन्तयत् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; स्वरैः—उनके स्वरों से; आकृतिभिः—शारीरिक डीलडौल से; तान्—उनको; तु—फिर भी; प्रकोष्ठैः—उनकी कलाइयों को (देख) कर; ज्या—धनुष की डोरियों से; हतैः—चिन्हित; अपि—भी; राजन्य—राजसी; बन्धून्—पारिवारिक सदस्यों के रूप में; विज्ञाय—पहचान कर; दृष्ट—देखा हुआ; पूर्वान्—इससे पहले से; अचिन्तयत्—उसने विचार किया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : उनकी आवाज, उनके शारीरिक डीलडौल तथा उनकी कलाइयों पर धनुष की डोरियों से बने चिन्हों से जरासन्ध यह जान गया कि उसके अतिथि राजन्य हैं। वह सोचने लगा कि इसके पूर्व मैंने उन्हें कहीं न कहीं देखा है।

तात्पर्य : आचार्यगण इंगित करते हैं कि जरासन्ध द्रौपदी स्वयंवर में कृष्ण, भीमसेन तथा अर्जुन

को देख चुका था। चूँकि वे ब्राह्मण का वेश बनाकर भीख माँगने आये थे, अतः जरासन्ध ने सोचा कि ये निम्नवर्ग के क्षत्रिय हैं, जैसाकि राजन्य-बन्धून् शब्द से सूचित होता है।

राजन्यबन्धवो ह्येते ब्रह्मलिङ्गानि बिभ्रति ।

ददानि भिक्षितं तेभ्य आत्मानमपि दुस्त्यजम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

राजन्य-बन्धवः—क्षत्रियों के सम्बन्धी; हि—निस्सन्देह; एते—ये; ब्रह्म—ब्राह्मणों के; लिङ्गानि—चिह्न; बिभ्रति—धारण करने वाले हैं; ददानि—मुझे देना चाहिए; भिक्षितम्—माँगा हुआ; तेभ्यः—उनको; आत्मानम्—अपना शरीर; अपि—भी; दुस्त्यजम्—जिसे छोड़ पाना असम्भव है।

[जरासन्ध ने सोचा] : ये निश्चित रूप से क्षत्रिय कुल के सदस्य हैं, जिन्होंने ब्राह्मणों का वेश बना रखा है, फिर भी मुझे इनको दान देना चाहिए भले ही वे मुझसे छोड़ने में दुष्कर मेरा शरीर ही क्यों न माँग लें।

तात्पर्य : यहाँ पर जरासन्ध दान के प्रति अपनी प्रबल प्रतिबद्धता प्रकट करता है, विशेष कर जब ब्राह्मण माँग रहे हों।

बलेर्नु श्रूयते कीर्तिर्वितता दिक्ष्वकल्मषा ।

ऐश्वर्याद्भ्रंशितस्यापि विप्रव्याजेन विष्णुना ॥ २४ ॥

श्रियं जिहीर्षतेन्द्रस्य विष्णावे द्विजरूपिणे ।

जानन्नपि महीम्प्रादाद्वार्यमाणोऽपि दैत्यराट् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

बलेः—बलि की; नु—नहीं; श्रूयते—सुनी जाती है; कीर्तिः—कीर्ति, ख्याति; वितता—विस्तीर्ण; दिक्षु—सभी दिशाओं में; अकल्मषा—निष्कलंक; ऐश्वर्यात्—उसके प्रबल पद से; भ्रंशितस्य—गिराये गये; अपि—भी; विप्र—ब्राह्मण के; व्याजेन—वेश में; विष्णुना—विष्णु द्वारा; श्रीयम्—ऐश्वर्य; जिहीर्षता—लेने की इच्छा से; इन्द्रस्य—इन्द्र का; विष्णावे—विष्णु के; द्विजरूपिणे—ब्राह्मण के रूप में प्रकट होकर; जानन्—जानते हुए; अपि—यद्यपि; महीम्—सारी पृथ्वी; प्रादात्—दे दिया; वार्यमाणः—मना किये जाने पर; अपि—भी; दैत्य—असुरों के; राट्—राजा ने।

निस्सन्देह, बलि महाराज की निष्कलंक ख्याति विश्व-भर में सुनाई पड़ती है। भगवान् विष्णु, बलि से इन्द्र का ऐश्वर्य वापस लेने की इच्छा से, उसके समक्ष ब्राह्मण के वेश में प्रकट हुए और उसके शक्तिशाली पद से उसे नीचे गिरा दिया। यद्यपि दैत्यराज बलि इस छल से परिचित थे और अपने गुरु द्वारा मना भी किये गये थे, तो भी उन्होंने विष्णु को दान में सारी पृथ्वी दे दी।

जीवता ब्राह्मणार्थाय को न्वर्थः क्षत्रबन्धुना ।
देहेन पतमानेन नेहता विपुलं यशः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

जीवता—जीवित रहने वाला; ब्राह्मण-अर्थाय—ब्राह्मणों के लाभार्थ; कः—कौन; नु—तनिक भी; अर्थः—लाभ; क्षत्र-
बन्धुना—पतित क्षत्रिय से; देहेन—शरीर से; पतमानेन—पतित होने ही वाले; न ईहता—प्रयास न करते हुए; विपुलम्—विस्तृत;
यशः—यश के लिए।

उस अयोग्य क्षत्रिय से क्या लाभ जो जीवित तो रहता है, किन्तु अपने नश्वर शरीर से ब्राह्मणों
के लाभार्थ कार्य करते हुए स्थायी यश प्राप्त करने में असफल रहता है ?

इत्युदारमतिः प्राह कृष्णार्जुनवृकोदरान् ।
हे विप्रा त्रियतां कामो ददाम्यात्मशिरोऽपि वः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उदार—उदार; मतिः—मानसिकता वालों ने; प्राह—कहा; कृष्ण-अर्जुन-वृकोदरान्—कृष्ण, अर्जुन तथा
भीम; हे विप्राः—हे विद्वान ब्राह्मणों; त्रियताम्—आप चुनाव कर लें; कामः—जो चाहें; ददामि—मैं दूँगा; आत्म—अपना;
शिरः—सिर; अपि—भी; वः—तुम सबों को।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] : इस प्रकार संकल्प करके उदार जरासन्ध ने कृष्ण, अर्जुन
तथा भीम से कहा : “हे विद्वान ब्राह्मणों, तुम जो भी चाहो चुन सकते हो। मैं तुम्हें दूँगा, चाहे
वह मेरा सिर ही क्यों न हो।”

श्रीभगवानुवाच

युद्धं नो देहि राजेन्द्र द्वन्द्वशो यदि मन्यसे ।
युद्धार्थिनो वयं प्राप्ता राजन्या नान्यकाङ्क्षिणः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् (कृष्ण) ने कहा; युद्धम्—युद्ध; नः—हमको; देहि—दीजिये; राज-इन्द्र—हे महान् राजा;
द्वन्द्वशः—एक-एक से भिड़न्त; यदि—यदि; मन्यसे—उचित समझते हो; युद्ध—युद्ध के लिए; अर्थिनः—इच्छुक; वयम्—हम
तीनों; प्राप्ताः—यहाँ आये हुए हैं; राजन्याः—राजसी वर्ग के सदस्य; न—नहीं; अन्य—और कुछ; काङ्क्षिणः—इच्छुक।

भगवान् ने कहा : हे राजेन्द्र, यदि आप उचित समझते हों, तो हमें एक द्वन्द्व के रूप में युद्ध
दीजिये। हम राजकुमार हैं और युद्ध की भिक्षा माँगने आये हैं। हमें आपसे कोई अन्य भिक्षा नहीं
चाहिए।

असौ वृकोदरः पार्थस्तस्य भ्रातार्जुनो ह्ययम् ।
अनयोर्मातुलेयं मां कृष्णं जानीहि ते रिपुम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

असौ—यह; वृकोदरः—भीम; पार्थः—पृथा का पुत्र; तस्य—उसका; भ्राता—भाई; अर्जुनः—अर्जुन; हि—निस्सन्देह; अयम्—यह; अन्योः—दोनों में से; मातुलेयम्—मामा के लड़के; माम्—मुझको; कृष्णम्—कृष्ण; जानीहि—जानो; ते—तुम्हारा; रिपुम्—शत्रु।

वह रहा पृथा-पुत्र भीम और यह उसका भाई अर्जुन है। मुझे इनका ममेरा भाई और अपना शत्रु कृष्ण जानो।

एवमावेदितो राजा जहासोच्चैः स्म मागधः ।

आह चामर्षितो मन्दा युद्धं तर्हि ददामि वः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; आवेदितः—आमंत्रित; राज—राजा; जहास—हँसा; उच्चैः—जोर से; स्म—निस्सन्देह; मागधः—जरासन्ध ने; आह—कहा; च—तथा; अमर्षितः—असहिष्णु; मन्दाः—अरे मूर्खों; युद्धम्—युद्ध; तर्हि—तब; ददामि—मैं दूँगा; वः—तुमको।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] : इस प्रकार ललकारे जाने पर, मगधराज जोर से हँसा और उपेक्षापूर्वक बोला, “बहुत अच्छा। अरे मूर्खों! मैं तुमसे द्वन्द्व युद्ध करूँगा।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने टीका की है कि जरासन्ध को आन्तरिक सन्तोष मिला, क्योंकि उसने सोचा कि उसके पास आने के लिए उसके शत्रुओं को ब्राह्मण का वेश बनाकर अपमानित होना पड़ा है। अतः आचार्य विश्वनाथ जरासन्ध के मन को इस प्रकार समझते हैं “अरे निर्बलो! युद्ध करने की झंझट भूल जाओ! तुम मेरा सिर क्यों नहीं माँग लेते? तुम लोगों ने भीख माँगने वाले ब्राह्मणों का वेश बनाकर वीरता को सूर्य की भाँति डुबो दिया है, किन्तु यदि तुमने अपना साहस नहीं खोया है, तो मैं तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा।”

आचार्य अन्ततः इंगित करते हैं कि देवी सरस्वती की मंशा है कि अमर्षितो मन्दाः को अमर्षितोमन्दाः पढ़ा जाय। दूसरे शब्दों में, भगवान् कृष्ण तथा पाण्डव अमन्दाः “मूर्ख नहीं” हैं, इसीलिए उन्होंने क्रूर जरासन्ध को सदा सदा के लिए समाप्त करने के लिए सर्वश्रेष्ठ विधि को चुना।

न त्वया भीरुणा योत्स्ये युधि विक्लवतेजसा ।

मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; त्वया—तुम्हारे साथ; भीरुणा—कायर; योत्स्ये—मैं लड़ूँगा; युधि—युद्ध में; विक्लव—क्षीण किया गया; तेजसा—तेज से; मथुराम्—मथुरा; स्व—निजी; पुरीम्—नगरी को; त्यक्त्वा—छोड़कर; समुद्रम्—समुद्र में; शरणम्—शरण के लिए; गतः—गया हुआ।

“लेकिन हे कृष्ण, मैं तुमसे युद्ध नहीं करूँगा, क्योंकि तुम कायर हो। तुम्हारे बल ने युद्ध

के बीच में ही तुम्हारा साथ छोड़ दिया था और तुम अपनी ही राजधानी मथुरा से समुद्र में शरण लेने के लिए भाग गये थे।

अयं तु वयसातुल्यो नातिसत्त्वो न मे समः ।
अर्जुनो न भवेद्योद्धा भीमस्तुल्यबलो मम ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

अयम्—यह; तु—दूसरी ओर; वयसा—उम्र में; अतुल्यः—समान नहीं; न—नहीं; अति—अत्यधिक; सत्त्वः—बल से युक्त; न—नहीं; मे—मेरे; समः—समान; अर्जुनः—अर्जुन; न भवेत्—नहीं होना चाहिए; योद्धा—स्पर्धा करने वाला, लड़ाकू; भीमः—भीम; तुल्य—समान; बलः—बल में; मम—मेरे।

“जहाँ तक इस अर्जुन की बात है, वह न तो आयु में मेरे समान है न ही अत्यधिक बलशाली है। चूँकि वह मेरी जोड़ का नहीं है, अतः उसे योद्धा नहीं बनना चाहिए। किन्तु भीम मेरे ही समान बलशाली है।”

इत्युक्त्वा भीमसेनाय प्रादाय महतीं गदाम् ।
द्वितीयां स्वयमादाय निर्जगाम पुराद्बहिः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

इति—ऐसा; उक्त्वा—कहकर; भीमसेनाय—भीमसेन के लिए; प्रादाय—देकर; महतीम्—विशाल; गदाम्—गदा; द्वितीयाम्—दूसरी; स्वयम्—खुद; आदाय—लेकर; निर्जगाम—निकल गया; पुरात्—नगर से; बहिः—बाहर।

यह कहकर जरासन्ध ने भीमसेन को एक बड़ी गदा दी, दूसरी गदा स्वयं ली और शहर के बाहर चला गया।

ततः समेखले वीरौ संयुक्तावितरेतरम् ।
जघ्नतुर्वज्रकल्पाभ्यां गदाभ्यां रणदुर्मदौ ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; समेखले—समतल अखाड़े में; वीरौ—दोनों वीर; संयुक्तौ—लगे हुए; इतर-इतरम्—एक दूसरे से; जघ्नतुः—प्रहार किया; वज्र-कल्पाभ्याम्—बिजली की भाँति; गदाभ्याम्—अपनी गदाओं से; रण—युद्ध में; दुर्मदौ—उन्मत्त।

इस तरह दोनों वीर नगर के बाहर समतल अखाड़े में एक दूसरे से युद्ध करने लगे। युद्ध के क्रोध से पगलाये हुए वे एक दूसरे पर वज्र जैसी गदाओं से प्रहार करने लगे।

मण्डलानि विचित्राणि सव्यं दक्षिणमेव च ।
चरतोः शुशुभे युद्धं नटयोरिव रङ्गिणोः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

मण्डलानि—घेरे; विचित्राणि—दक्ष; सव्यम्—बाई ओर; दक्षिणम्—दाहिनी ओर; एव च—भी; चरतोः—गति करने वालों के; शुशुभे—भव्य लग रहे थे; युद्धम्—युद्ध; नटयोः—अभिनेताओं के; इव—सदृश; रङ्गणोः—मंच पर।

जब वे दक्षता से दाएँ तथा बाएँ चक्कर काट रहे थे, जिस तरह कि मंच पर अभिनेता नाचते हैं, तब यह युद्ध भव्य दृश्य उपस्थित कर रहा था।

तात्पर्य : यहाँ पर जरासन्ध तथा भीम गदा चलाने में अपनी दक्षता प्रदर्शित कर रहे हैं। इस तरह यह जाना जा सकता है कि दोनों योद्धा निडर थे और युद्ध के क्रोध में भी अचल थे।

ततश्चटचटाशब्दो वज्रनिष्पेससन्निभः ।

गदयोः क्षिप्तयो राजन्दन्तयोरिव दन्तिनोः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; चट-चटा-शब्दः—चटचटाने की ध्वनि; वज्र—बिजली के; निष्पेस—गिरने, टूटने; सन्निभः—के समान; गदयोः—उनकी गदाओं के; क्षिप्तयोः—घुमाने से; राजन्—हे राजन् (परीक्षित); दन्तयोः—दाँतों के; इव—मानो; दन्तिनोः—हाथियों के।

हे राजन्, जब जरासन्ध तथा भीमसेन की गदाएँ जोर-जोर से एक दूसरे से टकरातीं, तो उनसे जो ध्वनि निकलती थी, वह दो लड़ते हुए हाथियों के दाँतों की टक्कर के समान या तूफान के समय चमकने वाली बिजली के गिरने के धमाके जैसी थी।

तात्पर्य : उपयुक्त भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत श्रीकृष्ण पर आधारित है।

ते वै गदे भुजजवेन निपात्यमाने

अन्योन्यतोऽसकटिपादकरोरुजत्रुम् ।

चूर्णीबभूवतुरुपेत्य यथार्कशाखे

संयुध्यतोऽद्विरदयोरिव दीप्तमन्व्योः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; वै—निस्सन्देह; गदे—दोनों गदाएँ; भुज—उनके हाथों की; जवेन—वेग से; निपात्यमाने—बलपूर्वक घुमाई जाने से; अन्योन्यतः—एक-दूसरे के विरुद्ध; अंस—कन्धे; कटि—कमर; पाद—पाँव; कर—हाथ; ऊरु—जाँघें; जत्रुम्—तथा कन्धे की हड्डियाँ, हँसली; चूर्णी—चूर्ण की हुई; बभूवतुः—बन गई; उपेत्य—स्पर्श करके; यथा—जिस तरह; अर्क-शाखे—अर्क (मदार) की दो टहनियाँ; संयुध्यतोः—तेजी से लड़ते हुए; द्विरदयोः—हाथियों की जोड़ी के; इव—सदृश; दीप्त—बढ़ा हुआ; मन्व्योः—जिनका क्रोध।

वे एक-दूसरे पर इतने बल और वेग से अपनी गदाएँ चलाने लगे कि जब ये उनके कंधों, कमर, पाँवों, हाथों, जाँघों तथा हँसलियों पर चोट करतीं, तो वे गदाएँ उसी तरह चूर्ण हो जातीं, जिस तरह कि एक दूसरे पर क्रुद्ध होकर आक्रमण कर रहे दो हाथियों से मदार की टहनियाँ

पिस जाती हैं।

इत्थं तयोः प्रहतयोर्गदयोर्नृवीरौ
 क्रुद्धौ स्वमुष्टिभिरयःस्पर्शैरपिष्टाम् ।
 शब्दस्तयोः प्रहरतोरिभयोरिवासीन्
 निर्घातवज्रपरुषस्तलताडनोत्थः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस तरह से; तयोः—उन दोनों की; प्रहतयोः—नष्ट हुई; गदयोः—गदाएँ; त्र—मनुष्यों में; वीरौ—दो महान् वीर;
 क्रुद्धौ—क्रुद्ध; स्व—अपनी; मुष्टिभिः—घुँसों से; अयः—लोहे जैसे; स्पर्शैः—स्पर्श से; अपिष्टाम्—चूर-चूर किया; शब्दः—
 ध्वनि; तयोः—उन दोनों के; प्रहरतोः—प्रहार करते; इभयोः—दो हाथियों के; इव—सदृश; आसीत्—बन गये; निर्घात—
 कड़कड़ाहट; वज्र—वज्र के समान; परुषः—कठोर; तल—हथेलियों के; ताडन—मारने से; उत्थः—उठी हुई।

जब उनकी गदाएँ विनष्ट हो गईं, तो पुरुषों में महान् वे वीर क्रोधपूर्वक अपने लोहे जैसे कठोर घुँसों से एक-दूसरे पर आघात करने लगे। जब वे एक-दूसरे पर घुँसे मार रहे थे, तो उससे निकलने वाली ध्वनि हाथियों के परस्पर लड़ने-भिड़ने या बिजली की कठोर कड़कड़ाहट जैसी लग रही थी।

तयोरेवं प्रहरतोः समशिक्षाबलौजसोः ।
 निर्विशेषमभूद्युद्धमक्षीणजवयोर्नृप ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

तयोः—दोनों के; एवम्—इस प्रकार; प्रहरतोः—प्रहार करते हुए; सम—समान; शिक्षा—प्रशिक्षण; बल—बल; ओजसोः—
 तथा उत्साह; निर्विशेषम्—अनिश्चित; अभूत्—था; युद्धम्—युद्ध; अक्षीण—कम न होने वाला; जवयोः—जिनकी थकान;
 नृप—हे राजा।

इस प्रकार उन दोनों के लड़ते हुए समान प्रशिक्षण, बल तथा उत्साह वाले प्रतिद्वन्द्वियों की यह प्रतियोगिता समाप्त नहीं हो रही थी। इस तरह हे राजन्, वे बिना किसी ढील के लड़े जा रहे थे।

तात्पर्य : इस अध्याय में कुछ आचार्य निम्नलिखित दो श्लोकों को भी सम्मिलित करते हैं और श्रील प्रभुपाद ने अपनी पुस्तक श्रीकृष्ण में भी इनका भावार्थ दिया है—

एवं तयोर्महाराज युध्यतोः सप्तविंशतिः ।

दिनानि निरगंस्तत्र सुहृद्वन् निशि तिष्ठतोः ॥

एकदा मातुलेयं वै प्राह राजन् वृकोदरः ।

न शक्तो ऽहं जरासन्धं निर्जेतुं युधि माधव ॥

“इस प्रकार हे राजन्! वे सत्ताइस दिनों तक लड़ते रहे। प्रत्येक दिन युद्ध समाप्त होने पर दोनों जरासन्ध के महल में रात में मित्रों की भाँति रहते थे। तब हे राजन्! अट्टाईसवें दिन वृकोदर (भीम) ने अपने ममेरे भाई से कहा, “माधव! मैं जरासन्ध को युद्ध में पराजित नहीं कर सकता।”

शत्रोर्जन्ममृती विद्वाञ्जीवितं च जराकृतम् ।

पार्थमाप्याययन्स्वेन तेजसाचिन्तयद्धरिः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

शत्रोः—शत्रु का; जन्म—जन्म; मृती—तथा मृत्यु; विद्वाञ्—जानते हुए; जीवितम्—जीवनदान; च—तथा; जरा—जरा नामक राक्षसी द्वारा; कृतम्—किया गया; पार्थम्—पृथा-पुत्र भीम को; आप्याययन्—शक्ति प्रदान करते हुए; स्वेन—अपनी ही; तेजसा—शक्ति से; अचिन्तयत्—सोचा; हरिः—भगवान् कृष्ण ने।

भगवान् कृष्ण अपने शत्रु जरासन्ध के जन्म तथा मृत्यु के रहस्य के बारे में जानते थे। वे यह भी जानते थे कि किस प्रकार जरा नामक राक्षसी ने उसे जीवनदान दिया। यह सब विचार करके कृष्ण ने भीम को अपनी विशेष शक्ति प्रदान कर दी।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण “जरासन्ध के जन्म का रहस्य जानते थे। जरासन्ध दो भिन्न माताओं से दो भिन्न भागों में जन्मा था। जब उसके पिता ने देखा कि यह शिशु बेकार का है, तो उसने दोनों भागों को जंगल में फेंक दिया, जहाँ जरा नामक किसी चुड़ैल ने उन्हें पा लिया। उसने किसी तरह शिशु के दोनों भागों को सिर से पैर तक जोड़ दिया। इसे जानने के कारण कृष्ण यह भी जानते थे कि उसे किस तरह मारा जाय।”

सञ्चिन्त्यारीवधोपायं भीमस्यामोघदर्शनः ।

दर्शयामास विटपं पाटयन्निव संज्ञया ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

सञ्चिन्त्य—विचार करके; अरि—शत्रु के; वध—मारने के लिए; उपायम्—साधनों के विषय में; भीमस्य—भीम के; अमोघ-दर्शनः—जिनका दर्शन अमोघ है, ऐसे भगवान्; दर्शयाम् आस—दिखलाया; विटपम्—वृक्ष की एक शाखा; पाटयन्—बीच से चीरते हुए; इव—सदृश; संज्ञया—संकेत के रूप में।

शत्रु को किस तरह मारा जाय इसका निश्चय करके उन अमोघ-दर्शन भगवान् ने एक वृक्ष की टहनी को बीच से चीर कर भीम को संकेत किया।

तद्विज्ञाय महासत्त्वो भीमः प्रहरतां वरः ।
गृहीत्वा पादयोः शत्रुं पातयामास भूतले ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तत्—उसे; विज्ञाय—समझ कर; महा—महान्; सत्त्वः—शक्ति वाले; भीमः—भीम ने; प्रहरताम्—योद्धाओं में; वरः—श्रेष्ठतम; गृहीत्वा—पकड़ कर; पादयोः—पाँवों से; शत्रुम्—शत्रु को; पातयाम् अस—पटक दिया; भू-तले—भूमि पर।

इस संकेत को समझ कर, योद्धाओं में सर्वश्रेष्ठ उस बलशाली भीम ने अपने प्रतिद्वन्दी के पैर

पकड़ कर उसे भूमि पर पटक दिया।

एकम्पादं पदाक्रम्य दोर्भ्यामन्यं प्रगृह्य सः ।
गुदतः पाटयामास शाखमिव महागजः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

एकम्—एक; पादम्—पैर; पदा—अपने पैर से; आक्रम्य—ऊपर खड़े होकर; दोर्भ्याम्—अपने दोनों हाथों से; अन्यम्—दूसरा; प्रगृह्य—पकड़ कर; सः—उसने; गुदतः—गुदा से लेकर; पाटयाम् आस—चीर डाला; शाखाम्—वृक्ष की शाखा को; इव—सदृश; महा—विशाल; गजः—हाथी।

भीम ने अपने पाँव से जरासन्ध के एक पाँव को दबा लिया और दूसरे पाँव को अपने हाथों से पकड़ लिया। फिर जिस तरह कोई विशाल हाथी किसी वृक्ष से एक शाखा तोड़ ले, उसी तरह भीम ने जरासन्ध को गुदा से लेकर ऊपर तक चीर डाला।

एकपादोरुवृषणकटिपृष्ठस्तनांसके ।
एकबाह्वक्षिभूकर्णे शकले ददृशुः प्रजाः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

एक—एक; पाद—पाँव से; ऊरु—जाँघ; वृषण—अण्डकोश; कति—कमर; पृष्ठ—पीठ; स्तन—छाती; अंसके—तथा कंधा; एक—एक; बाहु—भुजा से; अक्षि—आँख; भू—भौंह; कर्णे—तथा कान; शकले—दो खंडों में; ददृशुः—देखा; प्रजाः—प्रजा ने।

तब राजा की प्रजा ने उसे दो अलग-अलग खण्डों में पड़ा हुआ देखा। प्रत्येक खण्ड में एक-एक पाँव, जाँघ, अण्डकोश, कमर, कंधा, बाँह, आँख, भौंह, कान तथा आधी पीठ एवं छाती थे।

हाहाकारो महानासीन्निहते मगधेश्वरे ।
पूजयामासतुभीमं परिरभ्य जयाच्च्यतौ ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

हाहा-कार:—शोक की चीख; महान्—अत्यधिक; आसीत्—उठी; निहते—मारे जाने पर; मगध-ईश्वरे—मगध के राजा के; पूजयाम् आसतु:—दोनों ने सम्मान किया; भीमम्—भीम को; परिरभ्य—आलिंगन करके; जय—अर्जुन; अच्युतौ—तथा कृष्ण ने।

मगधराज की मृत्यु होते ही हाहाकार होने लगा, जबकि अर्जुन तथा कृष्ण ने भीम का आलिंगन करके उसे बधाई दी।

सहदेवं तत्तनयं भगवान्भूतभावनः ।
अभ्यषिञ्चदमेयात्मा मगधानां पतिं प्रभुः ।
मोचयामास राजन्यान्संरुद्धा मागधेन ये ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

सहदेवम्—सहदेव नामक; तत्—उसके (जरासन्ध का); तनयम्—पुत्र को; भगवान्—भगवान्; भूत—सारे जीवों के; भावनः—पालनकर्ता; अभ्यषिञ्चत्—अभिषेक कर दिया; अमेय-आत्मा—अपरिमेय; मगधानाम्—मगधवासियों के; पतिम्—स्वामी के रूप में; प्रभुः—प्रभु ने; मोचयाम् आस—छोड़ दिया; राजन्यान्—राजाओं को; संरुद्धाः—बन्दी बनाये गये; मागधेन—जरासन्ध द्वारा; ये—जो।

समस्त जीवों के पालनकर्ता तथा हितकारी अपरिमेय भगवान् ने जरासन्ध के पुत्र सहदेव का अभिषेक मगधवासियों के नवीन राजा के रूप में कर दिया। तब भगवान् ने उन समस्त राजाओं को मुक्त किया, जिन्हें जरासन्ध ने बन्दी बना रखा था।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं “यद्यपि जरासन्ध का वध हो गया किन्तु न तो कृष्ण ने, न ही दोनों पाण्डव-भाइयों ने सिंहासन पर अपना अधिकार जतलाया। जरासन्ध का वध करने के पीछे उनका उद्देश्य विश्वशान्ति बनाये रखने के विरुद्ध उसके उत्पात को रोकना था। असुर सदैव उत्पात मचाता है, जबकि देवतागण विश्व में शान्ति बनाये रखने का प्रयास करते हैं। भगवान् कृष्ण का उद्देश्य सत्पुरुषों को संरक्षण प्रदान करना और अशान्ति फैलाने वाले असुरों को मारना है। इसलिए कृष्ण ने तुरन्त ही जरासन्ध के पुत्र को बुलवाया, जिसका नाम सहदेव था और उपयुक्त क्रियाकर्म के बाद उसे अपने पिता का आसन ग्रहण करने तथा शान्तिपूर्वक राज्य चलाने का आदेश दिया। भगवान् कृष्ण सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हैं। वे चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति शान्तिपूर्वक रहे और कृष्णभावनामृत सम्पन्न करे। सहदेव को सिंहासन पर बैठाकर उन्होंने सारे राजाओं तथा राजकुमारों को मुक्त कर दिया, जिन्हें जरासन्ध ने व्यर्थ ही बन्दी बना रखा था।”

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “जरासन्ध असुर का वध” नामक बहत्तरवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।